किंफलमेदं धम्मज्झाणं ? अक्खवएसु विउलामरसुहफलं गुणसेडीए कम्मणिज्जराफलं च । खवएसु पुण असंखेज्जगुणसेडीए कम्मपदेसणिज्जरणफलं सुहकम्माणमुक्कस्साणुभाग-विहाणफलं च । अतएव धर्म्मादनपेतं धर्म्यं ध्यानमिति सिद्धम् । एत्थ गाहाओ-

होंति सुहासव-संवर-णिज्जरामरसुहाइं विउलाइं[1] ।
ज्झाणवरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स ।। ५६ ।।
जह वा घणसंघाया खणेण पवणाहया विलिज्जंति ।
ज्झाणप्पवणोवहया[2] तह कम्मघणा विलिज्जंति ।। ५७ ।।

एवं धम्मज्झाणस्स परूवणा गदा ।

संपहि सुक्कज्झाणस्स परूवणं कस्सामो । तं जहा- कुदो एदस्स सुक्कत्तं ? कसाय-मलाभावादो । तं च चउव्विहं-पुधत्तविदक्कवीचारं एयत्तविदक्कअवीचारं सुहुमकिरियमप्पडि-वादि समुच्छिण्णकिरियमप्पडिवादि चेदि । तत्थ पढमसुक्कज्झाणलक्खणं वुच्चदे- पृथक्त्वं भेदः । वितर्कः श्रुतं द्वादशांगम् । वीचारः संक्रान्तिः अर्थ-व्यंजनयोगेषु । पृथक्त्वेन भेदेन वितर्कस्य श्रुतस्य वीचारः संक्रान्तिः यस्मिन् ध्याने तत्पृथक्त्ववितर्कवीचारम्[3] । एत्थ गाहाओ।

शंका - इस धर्मध्यानका क्या फल है ?

समाधान - अक्षपक जीवोंको देवपर्याय सम्बन्धी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुणश्रेणिमें कर्मोंकी निर्जरा होना भी उसका फल है; तथा क्षपक जीवोंके तो असंख्यात गुणश्रेणिरूपसे कर्मप्रदेशोंकी निर्जरा होना और शुभ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागका होना उसका फल है । अतएव जो धर्मसे अनपेत है वह धर्मध्यान है, यह बात सिद्ध होती है । इस विषयमें गाथायें-

उत्कृष्ट धर्मध्यानके शुभ आस्रव, संवर, निर्जरा और देवोंका सुख; ये शुभानुबन्धी विपुल फल होते हैं ।। ५६ ।।

अथवा, जैसे मेघपटल पवनसे ताडित होकर क्षण मात्रमें विलीन हो जाते हैं वैसे ही ध्यानरूपी पवनसे उपहत होकर कर्म-मेघ भी विलीन हो जाते हैं ।। ५७ ।।

इस प्रकार धर्मध्यानका कथन समाप्त हुआ । अव शुक्लध्यानका कथन करते हैं । यथा-

शंका - इसे शुक्लपना किस कारणसे प्राप्त है ?

समाधान - कषाय-मलका अभाव होनेसे ।

वह चार प्रकारका है- पृथक्त्ववितर्क-वीचार, एकत्ववितर्क-अवीचार, सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती और समुच्छिन्नक्रिया-अप्रतिपाती । उनमेंसे प्रथम शुक्लध्यानका लक्षण कहते हैं- पृथक्त्वका अर्थ भेद है, वितर्कका अर्थ द्वादशांग श्रुत है; और वीचारसे मतलब अर्थ, व्यंजन और योगकी संक्रान्ति है । पृथक्त्व अर्थात् भेदरूपसे वितर्क अर्थात् श्रुतका वीचार अर्थात् संक्रान्ति जिस ध्यानमें होती है वह पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामका ध्यान है । इस विषयमें गाथायें-

---

(१) अ-आप्रत्योः 'सुहावि उद्धा वि' इति पाठः । (२) आ-ताप्रत्योः 'पवणाहया' इति पाठः ।
(३) अ-आप्रत्योः 'वीचारः' इति पाठः ।

दव्वाइमणेगाइं तीहि वि जोगेहि जेण ज्झायंति ।
उवसंतमोहणिज्जा तेण पुधत्तं ति तं भणिदं[१] ।। ५८ ।।
जम्हा सुदं विदक्कं जम्हा पुव्वगयअत्थकुसलो य ।
ज्झायदि ज्झाणं एदं सविदक्कं तेण तं ज्झाणं[२] ।। ५९ ।।
अत्थाण वंजणाण य जोगाण य संकमो हु वीचारो ।
तस्स य भावेण तगं सुत्ते उत्तं सवीचारं[३] ।। ६० ।।

एदस्स भावत्थो उच्चदे-उवसंतकसायवीयरायछदुमत्थो चोद्दस-दस-णवपुव्वहरो पसत्थतिविहसंघडणो कसाय-कलंकुत्तिण्णो तिसु जोगेसु एगजोगम्हि वट्टमाणो एगदव्वं गुणपज्जायं वा पढमसमए बहुणयगहणणिलीणं सुद-रविकिरणुज्जोयबलेण ज्झाएदि । एवं तं चेव अंतोमुहुत्तमेत्तकालं ज्झाएदि[४] । तदो परदो अत्थंतरस्स णियमा संकमदि । अधवा तम्हि चेव अत्थे गुणस्स पज्जायस्स वा संकमदि । पुव्विल्लजोगादो जोगंतरं पि सिया संकमदि । एगमत्थमत्थंतरं गुणगुणंतरं पज्जायपज्जायंतरं च हेट्ठोवरि ट्ठविय पुणो तिण्णि जोगे एगपंतीए ठविय

द	गु	प	म	व	का
द	गु	प			

दुसंजोग-तिसंजोगेहि एत्थ पुधत्तविदक्कवीचारज्झाण-भंगा बादालीस[५] । ४२ । उप्पाएदव्वा । एवमंतोमुहुत्तकालमुवसंतकसाओ सुक्कलेस्सिओ पुधत्तविदक्क[६]वीचारज्झाणं छदव्व-णवपयत्थवि-

---

यत: उपशान्तमोह जीव अनेक द्रव्योंका तीनों ही योगोंके आलम्बनसे ध्यान करते हैं इसलिये उसे पृथक्त्व ऐसा कहा है ।। ५८ ।।

यत: वितर्कका अर्थ श्रुत है, और यत: पूर्वगत अर्थमें कुशल साधु ही इस ध्यानको ध्याते हैं, इसलिये इस ध्यानको सवितर्क कहा है ।। ५९ ।।

अर्थ, व्यंजन और योगोंका संक्रम वीचार है । जो ऐसे संक्रमसे युक्त होता है उसे सूत्रमें सवीचार कहा है ।। ६० ।।

इसका भावार्थ कहते हैं- चौदह, दस और नौ पूर्वोंका धारी, प्रशस्त तीन संहननवाला, कषाय-कलंकसे पारको प्राप्त हुआ और तीन योगोंमेंसे किसी एक योगमें विद्यमान ऐसा उपशान्त कषायवीतराग-छद्मस्थ जीव बहुत नयरूपी बनमें लीन हुए ऐसे एक द्रव्य या गुण-पर्यायको श्रुतरूपी रविकिरणके प्रकाशके बलसे ध्याता है । इस प्रकार पदार्थको अन्तर्मुहूर्त काल तक ध्याता है । इसके बाद अर्थान्तरपर नियमसे संक्रमित होता है । अथवा उसी अर्थके गुण या पर्यायपर संक्रमित होता है । और पूर्व योगसे स्यात् योगान्तरपर संक्रमित होता है । इस तरह एक अर्थ, अर्थान्तर, गुण, गुणान्तर और पर्याय, पर्यायान्तरको नीचे ऊपर स्थापित करके फिर तीन योगोंको एक पंक्तिमें स्थापित करके द्विसंयोग और त्रिसंयोगकी अपेक्षा यहां पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानके ४२ भंग उत्पन्न करना चाहिये । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक शुक्ललेश्यावाला उपशान्तकषाय जीव छह द्रव्य और नौ पदार्थविषयक पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानको

---

(१) ताप्रतौ 'भणदि' इति पाठः । (२) भग. १८८१. (३) भग. १८८२ (४) आ-ताप्रत्योः 'ज्झायदि' इति पाठः ।
(५) आ-ताप्रत्योः 'बाएदालीस' इति पाठः । (६) प्रतिषु 'वितक्क' इति पाठः ।

सयमंतोमुहुत्तकालं ज्झायइ । अत्थदो अत्थंतरसंकमे संते वि ण ज्झाणविणासो, चित्तंतर-गमणाभावादो । एवं संवर-णिज्झरामरसुहफलं, एदम्हादो णिव्वुइगमणाणुवलंभादो । एवं पुधत्तविदक्कवीचारज्झाणपरूवणा गदा ।

संपहि बिदियसुक्कज्झाणपरूवणं कस्सामो-एकस्य भाव: एकत्वम्, वितर्को द्वादशांगम्, असंक्रांतिरवीचार:, एकत्वेन वितर्कस्य अर्थ-व्यंजन-योगानामवीचार: असंक्रांति: यस्मिन् ध्याने तदेकत्ववितर्कावीचारं ध्यानम् । एत्थ गाहाओ-

जेणेगमेव दव्वं जोगेणेक्केण अण्णदरएण ।
खीणकसाओ ज्झायइ तेणेयत्तं तगं भणिदं[1] ।। ६१ ।।

जम्हा सुदं विदक्कं जम्हा पुव्वगयअत्थकुसलो य ।
ज्झायदि झाणं एदं सविदक्कं तेण तज्झाणं[2] ।। ६२ ।।

अत्थाण वंजणाण य जोगाण य संकमो हु वीचारो ।
तस्स अभावेण तगं ज्झाणमवीचारमिदि वुत्तं[3] ।। ६३ ।।

एदस्स भावत्थो - खीणकसाओ सुक्कलेस्सिओ ओघबलो ओघसूरो वज्जरिसहवइ-रणारायणसरीरसंघडणो अण्णदरसंठाणो चोद्दसपुव्वहरो दसपुव्वहरो णवपुव्वहरो वा खइयसम्माइट्ठी खविदासेसकसायवग्गो णवपयत्थेसु एगपयत्थं दव्व-गुण-पज्जयभेदेण

अन्तर्मुहूर्त काल तक ध्याता है। अर्थसे अर्थान्तरका संक्रम होनेपर भी ध्यानका विनाश नहीं होता, क्योंकि, इससे चिन्तान्तरमें गमन नहीं होता । इस प्रकार इस ध्यानके फलस्वरूप संवर, निर्जरा और अमरसुख प्राप्त होता है, क्योंकि, इससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ।

इस प्रकार पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानका कथन समाप्त हुआ ।

अब द्वितीय शुक्लध्यानका कथन करते हैं- एकका भाव एकत्व है, वितर्क द्वादशांगको कहते हैं और अवीचारका अर्थ असंक्रान्ति है । अभेदरूपसे वितर्कसम्बन्धी अर्थ, व्यंजन और योगोंका अवीचार अर्थात् असंक्रान्ति जिस ध्यानमें होती है वह एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान है । इस विषयमें गाथायें-

यतः क्षीणकषाय जीव एक ही द्रव्यका किसी एक योगके द्वारा ध्यान करता है, इसलिये उस ध्यानको एकत्व कहा है ।। ६१ ।।

यत: वितर्कका अर्थ श्रुत है और जिसलिये पूर्वगत अर्थमें कुशल साधु इस ध्यानको ध्याता है, इसलिये इस ध्यानको सवितर्क कहा है ।। ६२ ।।

अर्थ, व्यंजन और योगोंके संक्रमका नाम वीचार है । यत: उस वीचारके अभावसे यह ध्यान होता है इसलिये इसे अवीचार कहा है ।। ६३ ।।

इसका यह आशय है - जिसके शुक्ल लेश्या है, जो निसर्गसे बलशाली है, निसर्गसे शूर है, वज्रवृषभवज्रनाराचसंहननका धारी है, किसी एक संस्थानवाला है, चौदह पूर्वधारी है, दस पूर्वधारी है या नौ पूर्वधारी है, क्षायिकसम्यग्दृष्टि है, और जिसने समस्त कषायवर्गका क्षय कर

---

(१) भग. १८८३. (२) भग. १८८४. (३) भग. १८८५.

ज्झाएदि, अण्णदरजोगेण अण्णदराभिधाणेण य तत्थ एगम्हि दव्वे गुणे पज्जाए वा मेरुमहियरो व्व णिच्चलभावेण अवट्ठियचित्तस्स असंखेज्जगुणसेडीए कम्मक्खंधे गालयंतस्स अणंतगुणहीणाए सेडीए कम्माणुभागं सोसयंतस्स कम्माणं ट्ठिदीयो एगजोग-एगाभिहाणज्झाणेण घादयंतस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालो गच्छदि । तदो सेसखीणकसाय-द्धमेत्तट्ठिदीयो मोत्तूण उवरिमसव्वट्ठिदीयो घेत्तूण उदयादिगुणसेडिसरूवेण रचिय पुणो ट्ठिदिखंडएण विणा अधट्ठिदि[1]गलणेण असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मक्खंधे घादंतो गच्छदि जाव खीणकसायचरिमसमओ त्ति । तत्थ खीणकसायचरिमसमए णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणि विणासेदि[2]। एदेसु विणट्ठेसु केवलणाणी केवलदंसणी अणंतवीरियो दाण-लाह-भोगुवभोगेसु[3] विग्घवज्जियो होदि त्ति घेत्तव्वं । दोण्णं सुक्कज्झा-णाणं किमालंबणं ? खंति-मद्दवादओ । एत्थ गाहा-

अह खंति-मद्दवज्जव-मुत्तीयो जिणमदप्पहाणाओ ।
आलंबणेहि जेहिं सुक्कज्झाणं समारुहइ ।। ६४ ।।

संपहि दोण्णं सुक्कज्झाणाणं फलपरूवणं कस्सामो- अट्ठावीसभेयभिण्णमोहणीयस्स सव्वुवसमावट्ठाणफलं पुधत्तविदक्कवीचारसुक्कज्झाणं । मोहसव्वुवसमो पुण धम्मज्झा-

---

दिया है ऐसा क्षीणकषाय जीव नौ पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थका द्रव्य, गुण और पर्यायके भेदसे ध्यान करता है। इस प्रकार किसी एक योग और एक शब्दके आलम्बनसे वहां एक द्रव्य, गुण या पर्यायमें मेरुपर्वतके समान निश्चलभावसे अवस्थित चित्तवाले; असंख्यात गुणश्रेणि क्रमसे कर्मस्कन्धोंको गलानेवाले, अनन्तगुणहीन श्रेणिक्रमसे कर्मोंके अनुभागको शोषित करनेवाले और कर्मोंकी स्थितियोंको एक योग तथा एक शब्दके आलम्बनसे प्राप्त हुए ध्यानके बलसे घात करनेवाले उस जीवका अन्तर्मुहूर्त काल जाता है । तदनन्तर शेष रहे क्षीणकषायके काल प्रमाण स्थितियोंको छोड़कर उपरिम सब स्थितियोंको उदयादि गुणश्रेणिरूपसे रचना करके पुन: स्थितिकाण्डकघातसे विना अध:स्थितिगलना द्वारा ही असंख्यातगुण श्रेणिक्रमसे कर्मस्कन्धोंका घात करता हुआ क्षीणकषायके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक जाता है । और वहां क्षीणकषायके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मोंका युगपत् नाश करता है । इस प्रकार इनका नाश हो जानेपर वह जीव तदनन्तर समयमें केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और अनन्तवीर्यका धारी तथा दान-लाभ-भोग और उपभोगके विघ्नसे रहित होता है, ऐसा यहां समझना चाहिये ।

शंका - दोनों ही शुक्लध्यानोंका क्या आलम्बन है ?

समाधान - क्षमा और मार्दव आदि आलम्बन है ।

इस विषयमें गाथा, क्षमा, मार्दव, आर्जव और संतोष ये जिनमतमें ध्यानके प्रधान आलम्बन कहे गये हैं, जिन आलम्बनोंका सहारा लेकर साधु शुक्लध्यानपर आरोहण करते हैं ।। ६४ ।।

अब दोनों प्रकारके शुक्ल ध्यानोंके फलका कथन करते हैं- अट्ठाईस प्रकारके मोहनीयकी सर्वोपशमना होनेपर उसमें स्थित रखना पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यानका फल है।

---

(१) प्रतिषु 'अद्धट्ठिदि' इति पाठः । (२) अ-आप्रत्यो: 'विणासेडी' इति पाठः ।
(३) आ-ताप्रत्यो: 'दाणलाहभोगेसु' इति पाठः ।

णफलं; सकसायत्तणेण धम्मज्झाणिणो सुहुमसांपराइयस्स चरिमसमए मोहणीयस्स सव्वुवसमुवलंभादो । तिण्ण घादिकम्माणं णिम्मूलविणासफलमेयत्तविदक्कअवीचार-ज्झाणं । मोहणीयविणासो[1] पुण धम्मज्झाणफलं, सुहुमसांपरायचरिमसमए तस्स विणासुवलंभादो । मोहणीयस्स उवसमो जदि धम्मज्झाणफलं तो ण क्खदी, एयादो दोण्णं कज्जाणमुप्पत्तिविरोहादो ? ण, धम्मज्झाणादो अणेयभेयभिण्णादो अणेयकज्जा-णमुप्पत्तीए विरोहाभावादो । एयत्तवियक्क-अवीयार[2] ज्झाणस्स अप्पडिवाइविसेसणं किण्ण कदं ? ण, उवसंतकसायम्मि भवद्धा[3] खएहि कसाएसु णिवदिदम्मि पडिवादुव-लंभादो । उवसंतकसायम्मि एयत्तविदक्कावीचारे संते 'उवसंतो दु पुधत्तं' इच्चेदेण विरोहो होदि[4] त्ति णासंकणिज्जं तत्थ पुधत्तमेवे त्ति णियमाभावादो । ण च खीणकसाय-द्धाए सव्वत्थ एवत्तविदक्कावीचारज्झाणमेव, जोगपरावत्तीए एगसमयपरूवणण्णहाणु-ववत्तिबलेण[5] तदद्धादीए पुधत्तविदक्कवीचारस्स[6] वि संभवसिद्धीदो । एत्थ गाहाओ-

---

परन्तु मोहका सर्वोपशम करना धर्मध्यानका फल है, क्योंकि, कषायसहित धर्म्यध्यानीके सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीय कर्मकी सर्वोपशमना देखी जाती है। तीन घाति कर्मोंका निर्मूल विनाश करना एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यानका फल है । परन्तु मोहनीयका विनाश करना धर्म्यध्यानका फल है, क्योंकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें उसका विनाश देखा जाता है ।

शंका - मोहनीय कर्मका उपशम करना यदि धर्म्यध्यानका फल है तो इसीसे मोहनीयका क्षय नहीं हो सकता, क्योंकि, एक कारणसे दो कार्योंकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि धर्म्यध्यान अनेक प्रकारका है, इसलिये उससे अनेक प्रकारके कार्योंकी उत्पत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका - एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यानके लिये 'अप्रतिपाती' विशेषण क्यों नहीं दिया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, उपशान्तकषाय जीवके भवक्षय और कालक्षयके निमित्तसे पुनः कषायोंको प्राप्त होनेपर एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यानका प्रतिपात देखा जाता है ।

शंका - यदि उपशान्तकषाय गुणस्थानमें एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान होता है तो 'उवसंतो दु पुधत्तं' इत्यादि गाथावचनके साथ विरोध आता है ?

समाधान - ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, उपशान्तकषाय गुणस्थानमें केवल पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यान ही होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है । और क्षीणकषायगुणस्थानके कालमें सर्वत्र एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान ही होता है, ऐसा भी कोई नियम नहीं है; क्योंकि, वहां योगपरावृत्तिका कथन एक समय प्रमाण अन्यथा बन नहीं सकता । इससे क्षीणकषाय कालके प्रारम्भमें पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानका अस्तित्व भी सिद्ध होता है । इस विषयमें गाथायें-

---

(१) ताप्रतौ 'मोहणीयणासो' इति पाठः । (२) अ-आप्रत्योः 'वियक्कोवीयार' इति पाठः । (३) प्रतिषु 'भवत्था' इति पाठः । (४) अ-आप्रत्योः 'विरोहादो होदि' इति पाठः । (५) अ-ताप्रत्योः '-णुववत्तीबलेण', आप्रतौ 'णुववत्तीदोबलेण' इति पाठः । (६) अ-आप्रत्योः 'विदक्कावीचारस्स', ताप्रतौ 'विदक्का (क्क) वीचारस्स' इति पाठः ।

जह चिरसंचियमिंधणमणलो पवणुग्गदो धुवं दहइ।
तह कम्मिंधणममियं खणेण झाणाणलो दहइ[1] ।। ६५ ।।
जह रोगासयसमणं विसोसणविरेयणोसहविहीहि ।
तह कम्मासयसमणं ज्झाणाणसणादिजोगेहि ।। ६६ ।।

संपहि सुक्कज्झाणस्स लिंगपरूवणा कीरदे - असंमोहविवेगविसग्गादओ सुक्कज्झाण-लिंगाणि । एत्थ गाहाओ-

अभयासंमोहविवेगविसग्गा तस्स होंति लिगाइं ।
लिंगिज्जइ जेहि मुणी सुक्कज्झाणोवगयचित्तो ।। ६७ ।।
चालिज्जइ वीहेइ व धीरो ण परिस्सहोवसग्गेहि ।
सुहुमेसु ण सम्मुज्झइ भावेसु ण देवमायासु ।। ६८ ।।
देहविचित्तं पेच्छइ अप्पाणं तह य सव्वसंजोए ।
देहोवहिवोसग्गं णिस्संगो सव्वदो कुणदि ।। ६९ ।।
ण कसायसमुत्थेहि[2] वि बाहिज्जइ माणसेहि दुक्खेहि ।
ईसाविसायसोगादिएहि ज्झाणोवगयचित्तो ।। ७० ।।
सीयायवादिएहि मि सारीरेहि बहुप्पयारेहिं ।
णो बाहिज्जइ साहू ज्झेयम्मि सुणिच्चलो संतो ।। ७१ ।।

जिस प्रकार चिरकालसे संचित हुए ईंधनको वायुसे वृद्धिको प्राप्त हुई अग्नि अतिशीघ्र जला देती है, उसी प्रकार अपरिमित कर्मरूपी ईंधनको ध्यानरूपी अग्नि क्षणमात्रमें जला देती है।। ६५ ।।

जिस प्रकार विशोषण, विरेचन और औषधके विधानसे रोगाशयका शमन होता है, उसी प्रकार ध्यान और अनशन आदि निमित्तसे कर्माशयका भी शमन होता है ।। ६६ ।।

अब शुक्लध्यानकी पहिचानका निर्देश करते हैं- असंमोह, विवेक और विसर्ग अर्थात् त्याग आदि शुक्लध्यानके लिंग हैं । इस विषयमें गाथायें-

अभय, असंमोह, विवेक और विसर्ग ये शुक्लध्यानके लिंग हैं, जिनके द्वारा शुक्लध्यानको प्राप्त हुआ चित्तवाला मुनि पहिचाना जाता है ।। ६७ ।।

वह धीर परीषह और उपसर्गोंसे न तो चलायमान होता है और न डरता है । तथा वह सूक्ष्म भावोंमें और देवमायामें भी नहीं मुग्ध होता है ।। ६८ ।।

वह देहको अपनेसे भिन्न अनुभव करता है । इसी प्रकार सब प्रकारके संयोगोंसे अपनी आत्माको भी भिन्न अनुभव करता है । तथा निःसंग हुआ वह सब प्रकारसे देह और उपधिका उत्सर्ग करता है ।। ६९ ।।

ध्यानमें अपने चित्तको लीन करनेवाला वह कषायोंसे उत्पन्न हुए ईर्ष्या, विषाद और शोक आदि मानसिक दुःखोंसे भी नहीं बाधा जाता है ।। ७० ।।

ध्येयमें निश्चल हुआ वह साधु शीत व आतप आदिक बहुत प्रकारकी शारीरिक बाधाओंके द्वारा भी नहीं बाधा जाता है ।। ७१ ।।

---

(१) ति.प. ९,१८. (२) प्रतिषु 'समुत्तेहि' इति पाठः ।

एवं बिदियसुक्कज्झाणपरूवणा गदा ।

संपहि तदियसुक्कज्झाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा- क्रिया नाम योग: । प्रतिपतितुं शीलं यस्य तत्प्रतिपाति । तत्प्रतिपक्ष: अप्रतिपाति । सूक्ष्मं क्रिया योगो यस्मिन् तत्सूक्ष्मक्रियम् । सूक्ष्मक्रियं च तदप्रतिपाति च सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानम् । केवलज्ञानेनापसारितश्रुतज्ञानत्वात् तदवितर्कम् । अर्थांतरसंक्रांत्यभावात्तदवीचारं व्यञ्जन-योगसंक्रांत्यभावाद्वा । कथं तत्संक्रांत्यभाव: ? तदवष्टंभबलेन विना अक्रमेण त्रिकाल-गोचराशेषावगते[1]:। एत्थ गाहाओ-

अविदक्कमवीचारं सुहुमकिरियबंधणं तदियसुक्कं ।
सुहुमम्मि कायजोगे भणिदं तं सव्वभावगयं[2] ।। ७२ ।।
सुहुमम्मि कायजोगे वट्टंतो केवली तदियसुक्कं ।
ज्झायदि णिरुंभिदुं जो सुहुमं तं कायजोगं पि[3] ।। ७३ ।।

एदस्स भावत्थो- उप्पण्णकेवलणाणदंसणेहि सव्वदव्वपज्जाए तिकालविसए जाणंतो पस्संतो करणक्कमववहाणवज्जियअणंतविरियो असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मणिज्जरं

इस प्रकार दूसरे शुक्लध्यानका कथन समाप्त हुआ।

अब तीसरे शुकलध्यानका कथन करते हैं । यथा - क्रियाका अर्थ योग है । वह जिसके पतनशील हो वह प्रतिपाती कहलाता है, और उसका प्रतिपक्ष अप्रतिपाती कहलाता है । जिसमें क्रिया अर्थात् योग सूक्ष्म होता है वह सूक्ष्मक्रिय कहा जाता, और सूक्ष्मक्रिय होकर जो अप्रतिपाती होता है वह सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान कहलाता है । यहां केवलज्ञानके द्वारा श्रुतज्ञानका अभाव हो जाता है, इसलिये यह अवितर्क है; और अर्थान्तरकी संक्रान्तिका अभाव होनेसे अवीचार है । अथवा व्यंजन और योगकी संक्रान्तिका अभाव होनेसे अवीचार है ।

शंका - इस ध्यानमें इनकी संक्रान्तिका अभाव कैसे है ?

समाधान - इनके आलम्बनके बिना ही युगपत् त्रिकाल गोचर अशेष पदार्थोंका ज्ञान होता है, इसलिये इस ध्यानमें इनकी संक्रान्तिके अभावका ज्ञान होता है । इस विषयमें गाथायें-

तीसरा शुक्लध्यान अवितर्क, अवीचार और सूक्ष्म क्रियासे सम्बन्ध रखनेवाला होता है, क्योंकि, काययोगके सूक्ष्म होने पर सर्वभावगत यह ध्यान कहा गया है ।। ७२ ।।

जो केवली जिन सूक्ष्म काययोगमें विद्यमान होते हैं वे तीसरे शुक्लध्यानका ध्यान करते हैं और उस सूक्ष्म काययोगका भी निरोध करनेके लिये उसका ध्यान करते हैं ।। ७३ ।।

अब इसका भावार्थ कहते हैं- केवलज्ञान और केवलदर्शनके उत्पन्न हो जानेके कारण जो त्रिकालविषयक सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायोंको जानते हैं और देखते हैं; करण, क्रम और व्यवधानसे रहित होकर जो अनन्तवीर्यके धारक है; तथा जो असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे कर्मोंकी निर्जरा कर रहे हैं, ऐसे सयोगी जिन कुछ कम पूर्वकोटि काल तक विहार कर आयुके अन्तर्मुहूर्त

---

(१) आ-ताप्रत्यो: 'गोचराक्षावगतेः' इति पाठः । (२) भग. १८८६. (३) भग. १८८७.

कुणमाणो देसूणपुव्वकोडिं विहरिय सजोगिजिणो अंतोमुहुत्तावसेसे आउए दंडकवाडपदरलोगपूरणाणि करेदि। तत्थ जं पढमसमए देसूणचोद्दसरज्जुउस्सेहं सगविक्खंभपमाणवट्टपरिवेदमप्पाणं कादूण ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे अणुभागस्स अणंते भागे घादेदूण चेट्ठदि तं दंडं णाम। विदियसमए पुव्वावरेण वादवलयवज्जियलोगागासं सव्वं पि सगदेहविक्खंभेण वाविय सेसट्ठिदिअणुभागाणं जहाकमेण असंखेज्ज-अणंते भागे घादिदूण जमवट्ठाणं तं कवाडं णाम। तदियसमए वादवलयं वज्जिय सव्वलोगागासं सगजीवपदेसेहि विसप्पिदूण सेसट्ठिदिअणुभागाणं कमेण असंखेज्जे भागे अणंते भागे च घादेदूण जमवट्ठाणं तं पदरं णाम। चउत्थसमए सव्वलोगागासमावूरिय सेसट्ठिदिअणुभागाणमसंखेज्जे भागे अणंते भागे च घादिय जमवट्ठाणं तं लोगपूरणं णाम। संपहि एत्थ सेसट्ठिदिपमा-णमंतोमुहुत्तो संखेज्जगुणमाउआदो। एत्तो प्पहुडि उवरि सव्वट्ठिदिखंडयाणि अणुभाग-खंडयाणि च अंतोमुहुत्तेण घादेदि। ट्ठिदिखंडयस्स आयामो अंतोमुहुत्तं अणुभागखंडयपमाणं पुण सेसअणुभागस्स अणंता भागा। एदेण कमेण अंतोमुहुत्तं गंतूण जोगणिरोहं करेदि। को जोगणिरोहो? जोगविणासो। तं जहा- एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादर-मणजोगं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरउस्सासणिस्सासं णिरुंभदि। तदो अंतोमुहुत्तेण

काल शेष रहने पर दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करते हैं। उसमें जो प्रथम समयमें कुछ कम चौदह राजु उत्सेध रूप और अपने विष्कंभप्रमाण गोलपरिवेदरूप आत्मप्रदेश कर स्थितिके असंख्यात बहुभागका और अनुभागके अनन्त बहुभागका घात कर स्थित रहते हैं, उसका नाम दण्ड-समुद्घात है। दूसरे समयमें पूर्व और पश्चिमकी ओरसे वातवलयके सिवाय पूरे लोकाकाशको अपने देहके विस्तारद्वारा व्याप्त कर शेष स्थिति और अनुभागका क्रमसे असंख्यात बहुभाग और अनन्त बहुभागका घात कर जो अवस्थान होता है वह कपाट समुद्घात है। तीसरे समयमें वातवलयके सिवाय पूरे लोकाकाशको अपने जीवप्रदेशोंके द्वारा व्याप्त कर शेष स्थिति और अनुभागका क्रमसे असंख्यात बहुभाग और अनन्त बहुभागका घात कर जो अवस्थान होता है वह प्रतर-समुद्घात है। चौथे समयमें सब लोकाकाशको व्याप्त कर शेष स्थिति और अनुभागका क्रमसे असंख्यात बहुभाग और अनन्त बहुभागका घात कर जो अवस्थान होता है वह लोकपूरण समुद्घात है। अब यहां शेष स्थितिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है जो कि आयुके प्रमाणसे संख्यातगुणा है। यहांसे लेकर आगे सब स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंको अन्तर्मुहूर्तके द्वारा घातता है। स्थितिकाण्डकका आयाम अन्तर्मुहूर्त है और अनुभागकाण्डकका प्रमाण शेष अनुभागके अनन्त बहुभाग है। इस क्रमसे अन्तर्मुहूर्त काल जानेपर योगनिरोध करता है।

शंका - योगनिरोध किसे कहते हैं ?

समाधान - योगोंके विनाशकी योगनिरोध संज्ञा है। यथा-

यहां अन्तर्मुहूर्त काल बिताकर बादर काययोगके द्वारा बादर मनोयोगका निरोध करता है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें बादर काययोगके द्वारा बादर वचनयोगका निरोध करता है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें बादर काययोगके द्वारा बादर उच्छ्वास निश्वासका निरोध करता है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें बादर

बादरकायजोगेण तमेव बादरकायजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमवचिजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमउस्सासणिस्सासं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरुंभमाणो इमाणि करणाणि करेदि- पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दयाणं हेट्ठदो । आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभागमोकड्डदि। एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयाणि करेदि । असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए जीवपदेसाणं च असंखेज्जगुणाए सेडीए । अपुव्वफद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदिभागो सेडिवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो अपुव्वफद्दयाणि सव्वाणि । एवमपुव्वफद्दयकरणविहाणं गदं ।

एत्तो अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि । अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । एत्थ अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए । जीवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए सेडीए ओकड्डदि। किट्टिगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । किट्टीओ सेडीए असंखेज्ज-

---

काययोगके द्वारा उसी बादर काययोगका निरोध करता है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म मनोयोगका निरोध करता है । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म वचनयोगका निरोध करता है । फिर अन्तर्मुहूतमें सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म उच्छ्वास-निश्वासका निरोध करता है । फिर अन्तर्मुहूर्त काल जानेपर सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म काययोगका निरोध करता हुआ इन करणोंको करता है । प्रथम समयमें पूर्व स्पर्धकोंके नीचे अपूर्व स्पर्धक करता है । ऐसा करते हुए प्रथम वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता हैं, और जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक अपूर्व स्पर्धक करता है । ये अपूर्व स्पर्धक प्रति समय पहले समयमें जितने किये गये उनसे अगले द्वितीयादि समयोंमें असंख्यात गुणे हीन श्रेणिरूपसे किये जाते हैं, और पहले समयमें जितने जीवप्रदेशोंका अपकर्षण कर किये उनसे अगले समयोंमें संख्यातगुणे श्रेणिरूपसे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण कर किये जाते हैं । इस प्रकर किये गये सब अपूर्व स्पर्धक जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण जगश्रेणिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भाग प्रमाण और पूर्व स्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं । इस प्रकार अपूर्व स्पर्धक करनेकी विधिका कथन समाप्त हुआ ।

इसके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक कृष्टियोंको करता है । और ऐसा करते हुए अपूर्व स्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है और जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है । इस प्रकार यहां अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टियां करता है । ये कृष्टियां प्रति समय पहले समयमें जितनी की गई उनसे आगे द्वितीयादि समयोंमें असंख्यातगुणीहीन श्रेणिरूपसे की जाती हैं, और पहले समयमें जितने जीवपद्रेशोंका अपकर्षण कर की गई उनसे अगले समयोंमें असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण कर की जाती हैं । कृष्टिगुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । सब कृष्टियां

विभागो। अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो । किट्टीकरणे णिट्ठिदे तदो से काले पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेइ । अंतोमुहुत्तं किट्टीगदजोगो होदि । सुहुमकिरियं अप्पडिवादि ज्झाणं ज्झायदि । किट्टीणं चरिमसमए असंखेज्जे भागे णासेइ । एदम्हि[1] जोगणिरोहकाले सुहुमकिरियमप्पडिवादि ज्झाणं ज्झायदि त्ति जं भणिदं तण्ण घडदे; केवलिस्स विसईकयासेसदव्वपज्जायस्स सगसव्वद्धाए एगरूवस्स अणिंदियस्स एगवत्थुम्हि मणणिरोहाभावादो । ण च मणणिरोहेण विणा ज्झाणं संभवदि; अण्णत्थ तहाणुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो; एगवत्थुम्हि चिंताणिरोहो ज्झाणमिदि जदि घेप्पदि तो होदि दोसो । ण च एवमेत्थ घेप्पदि । पुणो एत्थ कधं घेप्पदि त्ति भणिदे जोगो उवयारेण चिंता; तिस्से एयग्गेण णिरोहो विणासो जम्मि तं ज्झाणमिदि एत्थ घेत्तव्वं; तेण ण पुव्वुत्तदोससंभवो त्ति । एत्थ गाहाओ-

तोयमिव णालियाए तत्तायसभायणोदरत्थं वा ।
परिहादि कमेण तहा जोगजलं ज्झाणजलणेण ।। ७४ ।।

जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं और अपूर्व स्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ।

कृष्टिकरणक्रियाके समाप्त हो जानेपर फिर उसके अनन्तर समयमें पूर्व स्पर्धकोंका और अपूर्व स्पर्धकोंका नाश करता है। अन्तर्मुहूर्त कालतक कृष्टिगत योगवाला होता है, तथा सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति ध्यानको ध्याता है । अन्तिम समयमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका नाश करता है ।

शंका - इस योगनिरोधके कालमें केवली जिन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यानको ध्याते हैं, यह जो कथन किया है वह नहीं बनता, क्योंकि, केवली जिन अशेष द्रव्य पर्यायोंको विषय करते हैं, अपने सब कालमें एकरूप रहते हैं और इन्द्रियज्ञानसे रहित हैं; अतएव उनका एक वस्तुमें मनका निरोध करना उपलब्ध नहीं होता । और मनका निरोध किये विना ध्यानका होना सम्भव नहीं है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा देखा नहीं जाता ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, प्रकृतमें एक वस्तुमें चिन्ताका निरोध करना ध्यान है, यदि ऐसा ग्रहण किया जाता है तो उक्त दोष आता है । परन्तु यहां ऐसा ग्रहण नहीं करते हैं ।

शंका - तो यहां किस रूपमें ग्रहण करते हैं ?

समाधान - यहां उपचारसे योगका अर्थ चिन्ता है । उसका एकाग्ररूपसे निरोध अर्थात् विनाश जिस ध्यानमें किया जाता है वह ध्यान, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये, इसलिये यहां पूर्वोक्त दोष सम्भव नहीं है ।

इस विषयमें गाथायें -

जिस प्रकार नाली द्वारा जलका क्रमशः अभाव होता है, या तपे हुए लोहके पात्रमें स्थित जलका क्रमशः अभाव होता है, उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्निके द्वारा योगरूपी जलका क्रमशः नाश होता है ।। ७४।।

---

(१) अ-आप्रत्योः 'णासेडी एवं हि', ताप्रतौ 'भागणासेडि । एवं हि ' इति पाठः ।

जह सव्वसरीरगयं मंतेण विसं णिरुंभए डंके[1] ।
तत्तो पुणोऽवणिज्जदि पहाणझर[2]मंतजोएण ।। ७५ ।।
तह बादरतणुविसयं जोगविसं ज्झाणमंतबलजुत्तो ।
अणुभावम्मि णिरुंभदि अवणेदि तदो वि जिणवेज्जो ।। ७६ ।।

एवं तदियसुक्कज्झाणपरूवणा गदा ।

संपहि चउत्थसुक्कज्झाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा- समुच्छिन्ना क्रिया योगो यस्मिन् तत्समुच्छिन्नक्रियम् । समुच्छिन्नक्रियं च[3] अप्रतिपाति च समुच्छिन्नक्रियाप्रति-पाति ध्यानम्। श्रुतरहितत्वात् अवितर्कम् । जीवप्रदेशपरिस्पंदाभावादवीचरं अर्थ-व्यंजनयोगसंक्रांत्यभावाद्वा । एत्थ गाहा-

अविदक्कमवीचारं अणियट्टी अकिरियं च सेलेसिं ।
ज्झाणं णिरुद्धजोगं अपच्छिमं उत्तमं सुक्कं ।। ७७ ।।

एदस्स अत्थो- जोगम्हि णिरुद्धम्हि आउसमाणि कम्माणि होंति अंतोमुहुत्तं । से काले सेलेसियं पडिवज्जदि समुच्छिण्णकिरियमणियट्टि सुक्कज्झाणं ज्झायदि । कधमेत्थ ज्झाणववएसो ? एयग्गेण चिंताए जीवस्स णिरोहो परिप्फंदाभावो ज्झाणं णाम । किं

जिस प्रकार मन्त्रके द्वारा सब शरीरमें भिदे हुए विषका डंकके स्थानमें निरोध करते हैं, और प्रधान क्षरण करनेवाले मन्त्रके बलसे उसे पुन: निकालते हैं ।। ७५ ।।

उसी प्रकार ध्यानरूपी मन्त्रके बलसे युक्त हुआ यह सयोगिकेवली जिनरूपी वैद्य बादर शरीरविषयक योगविषयको पहले रोकता है और इसके बाद उसे निकाल फेंकता है ।। ७६ ।।

इस प्रकार तीसरे शुक्लध्यानका कथन समाप्त हुआ ।

अब चौथे शुक्लध्यानका कथन करते हैं । यथा- जिसमें क्रिया अर्थात् योग सम्यक् प्रकारसे उच्छिन्न हो गया है वह समुच्छिन्नक्रिय कहलाता है । और समुच्छिन्नक्रिय होकर जो अप्रतिपाती है वह समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाती ध्यान है । यह श्रुतज्ञानसे रहित होनेके कारण अवितर्क है । जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दका अभाव होनेसे अवीचार है; या अर्थ, व्यञ्जन और योगकी संक्रान्तिके अभाव होनेसे अवीचार है । इस विषयमें गाथा-

अन्तिम उत्तम शुक्ल ध्यान वितर्करहित है, वीचाररहित है, अनिवृत्ति है, क्रियारहित है, शैलेशी अवस्थाको प्राप्त है और योगरहित है ।। ७७ ।।

इसका अर्थ- योगका निरोध होनेपर शेष कर्मोंकी स्थिति आयुकर्मके समान अन्तर्मुहूर्त होती है। तदनन्तर समयमें शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होता है, और समुच्छिन्नक्रिय अनिवृत्ति शुक्लध्यानको ध्याता है ।

शंका - यहां ध्यान संज्ञा किस कारणसे दी गई है ?

समाधान - एकाग्ररूपसे जीवके चिन्ताका निरोध अर्थात् परिस्पन्दका अभाव होना ही ध्यान है, इस दृष्टिसे यहां ध्यान संज्ञा दी गई है ।

---

(१) प्रतिषु 'दंके' इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'पहाणयर' इति पाठः ।
(३) अ-ताप्रत्योः 'तणुवीसयजोगविसं' इति पाठः । (४) अप्रतौ 'यस्मिन् तत्समुच्छिन्नक्रियं च' इति पाठः ।

फलमेदं ज्झाणं ? अघाइचउक्कविणासफलं। तदियसुक्कज्झाणं जोगणिरोहफलं। सेलेसियअद्धाए ज्झीणाए सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छदि। एवं ज्झाणं णाम तवोकम्मं गदं।

ट्ठियस्स णिसण्णस्स णिव्वण्णस्स[1] वा साहुस्स कसाएहि सह देहपरिच्चागो काउसग्गो णाम। णेदं ज्झाणस्संतो[2] णिवददि; बारहाणुवेक्खासु वावदचित्तस्स वि काओस्सग्गुववत्तीदो। एवं तवोकम्म परूविदं।

जं तं किरियाकम्मं णाम ।। २७ ।।

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो–

तमादाहीणं पदाहिणं[3] तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम ।। २८ ।।

तं किरियाकम्मं छव्विहं आदाहीणादिभेदेण। तत्थ किरियाकम्मे कीरमाणे अप्पायत्तत्तं[4] अपरवसत्तं आदाहीणं णाम। पराहीणभावेण किरियाकम्मं किण्ण कीरदे ? ण; तहा किरियाकम्मं कुणमाणस्स कम्मक्खयाभावादो जिणिंदादिअच्चासणदुवारेण कम्म-बंधसंभवादो

शंका – इस ध्यानका क्या फल है ?

समाधान – अघाति चतुष्कका विनाश करना इस ध्यानका फल है।

योगका निरोध करना तीसरे शुक्लध्यानका फल है।

शैलेशी अवस्थाके कालके क्षीण होनेपर सब कर्मोंसे मुक्त हुआ यह जीव एक समयमें सिद्धिको प्राप्त होता है। इस प्रकार ध्यान नामक तप:कर्मका कथन समाप्त हुआ।

स्थित या बैठे हुए कायोत्सर्ग करनेवाले साधुका कषायोंके साथ शरीरका त्याग करना कायोत्सर्ग नामका तप:कर्म है। इसका ध्यानमें अन्तर्भाव नहीं होता, क्योंकि, जिसका बारह अनुप्रेक्षाओंके चिन्तवनमें चित्त लगा हुआ है उसके भी कायोत्सर्गकी उत्पत्ति देखी जाती है।

इस प्रकार तप:कर्मका कथन समाप्त हुआ।

अब क्रियाकर्मका अधिकार है ।। २७ ।।

इसके अर्थका खुलासा करते हैं –

आत्माधीन होना, प्रदक्षिणा करना, तीन वार करना, तीन वार अवनति, चार वार सिर नवाना और बारह आवर्त, यह सब क्रियाकर्म है ।। २८ ।।

आत्माधीन होना आदिके भेदसे वह क्रियाकर्म छह प्रकारका है। उनमेंसे क्रियाकर्म करते समय आत्माधीन होना अर्थात् परवश न होना आत्माधीन होना कहलाता है।

शंका – पराधीनभावसे क्रियाकर्म क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, उस प्रकार क्रियाकर्म करनेवालेके कर्मोंका क्षय नहीं होता और जिनेन्द्रदेव आदिकी आसादना होनेसे कर्मोंका बन्ध होता है।

---

(१) ताप्रतौ 'णिव्विण्णस्स' इति पाठः। (२) आ-क-ताप्रतिषु 'झाणस्संते' इति पाठः। (३) अ-आप्रत्योः 'पदाहीणं' इति पाठः। (४) मुद्रितप्रतौ 'अप्पायतत्तं' इति पाठः।

च। वंदणकाले गुरुजिणजिणहराणं पदक्खिणं काऊण णमंसणं पदाहिणं[1] णाम। पदाहिणणमंसणादिकिरियाणं तिण्णिवारकरणं तिक्खुत्तं णाम। अधवा एक्कम्हि चेव दिवसे जिणगुरुरिसिवंदणाओ तिण्णिवारं किज्जंति त्ति तिक्खुत्तं णाम। तिसंज्झासु चेव वंदणा कीरदे अण्णत्थ किण्ण कीरदे? ण; अण्णत्थ वि तप्पडिसेहणियमाभावादो। तिसंज्झासु वंदणणियमपरूवणट्ठं तिक्खुत्तमिदि भणिदं। ओणदं अवनमनं भूमावासनमित्यर्थः। तं च तिण्णिवारं कीरदे त्ति तियोणदमिदि भणिदं। तं जहा- सुध्दमणो धोदपादो[2] जिणिंददंसणजणिदहरिसेण पुलइदंगो संतो जं जिणस्स अग्गे बइसदि तमेगमोणदं। जमुट्ठिऊण जिणिंदादीणं विण्णत्तिं कादूण बइसणं तं बिदियमोणदं। पुणो उट्ठिय सामाइयदंडएण अप्पसुद्धिं काऊण सकसायदेहुस्सग्गं करिय जिणाणंतगुणे ज्झाइय चउवीसतित्थयराणं वंदणं काऊण पुणो जिणजिणालयगुरवाणं संथवं काऊण जं भूमीए बइसणं तं तदियमोणदं। एवं[3] एक्केक्कम्हि किरियाकम्मे कीरमाणे तिण्णि चेव ओणमणाणि होंति। सव्वकिरियाकम्मं चदुसिरं होदि। तं जहा- सामाइयस्स आदीए जं जिणिंदं पडि सीसणमणं तमेगं सिरं। तस्सेव अवसाणे जं सीसणमणं तं बिदियं सीसं। त्थोस्सामिदंडयस्स आदीए जं सीसणमणं तं तदियं सिरं। तस्सेव अवसाणे जं णमणं तं चउत्थं सिरं। एवमेगं किरियाकम्मं चदुसिरं

वन्दना करते समय गुरु, जिन और जिनगृहकी प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदि क्रियाओंका तीन वार करना त्रिःकृत्वा है। अथवा एक ही दिनमें जिन, गुरु और ऋषियोंकी वन्दना तीन बार की जाती है, इसलिये इसका नाम त्रिः कृत्वा है।

शंका - तीनों ही संध्याकालोंमें वन्दना की जाती है, अन्य समयमें क्यों नहीं की जाती ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, अन्य समयमें भी वन्दनाके प्रतिषेधका कोई नियम नहीं है।

तीनों सन्ध्या कालोंमें वन्दनाके नियमका कथन करनेके लिये 'त्रि:कृत्वा' ऐसा कहा है।

'ओणद' का अर्थ अवनमन अर्थात् भूमिमें बैठना है। वह तीन बार किया जाता है इसलिये तीन बार अवनमन करता कहा है। यथा- शुद्धमन, धौतपाद और जिनेन्द्रके दर्शनसे उत्पन्न हुए हर्षसे पुलकित वदन होकर जो जिनदेवके आगे बैठना, यह प्रथम अवनति है। तथा जो उठकर जिनेन्द्र आदिके सामने विज्ञप्ति कर बैठना, यह दूसरी अवनति है। फिर उठकर सामायिक दण्डकके द्वारा आत्मशुद्धि करके, कषायसहित देहका उत्सर्ग करके, जिनदेवके अनन्त गुणोंका ध्यान करके, चौवीस तीर्थंकरोंकी वन्दना करके फिर जिन, जिनालय और गुरुकी स्तुति करके जो भूमिमें बैठना, वह तीसरी अवनति है। इस प्रकार एक एक क्रियाकर्म करते समय तीन ही अवनति होती है।

सब क्रियाकर्म चतु:शिर होता है। यथा - सामायिकके आदिमें जो जिनेन्द्र देवको सिर नवाना वह एकसिर है। उसीके अन्तमें जो सिर नवाना वह दूसरा सिर है। 'त्थोस्सामि' दण्डकके आदिमें जो सिर नवाना वह तीसरा सिर है। तथा उसीके अन्तमें जो नमस्कार करना वह चौथा सिर है। इस प्रकार एक क्रियाकर्म चतु:शिर होता है। इससे अन्यत्र नमनका प्रतिषेध

(१) अ-आप्रत्यो: 'पदाहीणं' इति पाठः। (२) ताप्रतौ 'बोध (धोद) पादो' इति पाठः।
(३) ताप्रतौ 'एवं' इत्येतत्पदं नास्ति।

होदि। ण अण्णत्थ णवणपडिसेहो एदेण कदो, अण्णत्थणवणणियमस्स पडिसेहाकरणादो। अधवा सव्वं पि किरियाकम्मं चदुसिरं चदुप्पहाणं होदि; अरहंतसिद्धसाहुधम्मे चेव पहाणभूदे कादूण सव्वकिरियाकम्माणं पउत्ति-दंसणादो। सामाइयत्थोस्सामिदंडयाणं आदीए अवसाणे च मणवयणकायाणं विसुद्धिपरावत्तणवारा बारस हवंति। तेण एगं किरियाकम्मं बारसावत्तमिदि भणिदं। एदं सव्वं पि किरियाकम्मं णाम[1]।

जं तं भावकम्मं णाम ॥ २९ ॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो-

उवजुत्तो पाहुडजाणगो तं सव्वं भावकम्मं णाम ॥ ३० ॥

कम्मपाहुडजाणओ होदूण जो उवजुत्तो सो भावकम्मं णाम।

एदेसिं कम्माणं केण कम्मेण पयदं ? समोदाणकम्मेण पयदं ॥३१॥

कुदो ? कम्माणुयोगद्दारम्मि समोदाणकम्मस्सेव वित्थरेण परूविदत्तादो। अधवा संगहं पडुच्च एवं भणिदं। मूलतंते पुण पयोगकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्म-इरियावथकम्मतवो-कम्म-किरियाकम्माणि पहाणं; तत्थ वित्थारेण परूविदत्तादो।

नहीं किया गया है, क्योंकि, शास्त्रमें अन्यत्र नमन करनेके नियमका कोई प्रतिषेध नहीं है। अथवा सभी क्रियाकर्म चतु:शिर अर्थात् चतु:प्रधान होता है, क्योंकि, अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्मको प्रधान करके सब क्रियाकर्मोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है। सामायिक और त्थोस्सामि दण्डकके आदि और अन्तमें मन, वचन और कायकी विशुद्धिके परावर्तनके वार बारह होते हैं, इस लिये एक क्रियाकर्म बारह आवर्तसे युक्त कहा है। यह सब ही क्रियाकर्म है।

अब भावकर्मका अधिकार है ॥ २९ ॥

इसके अर्थका प्ररूपण करते हैं-

जो उपयुक्त प्राभृतका ज्ञाता है वह सब भावकर्म है ॥ ३० ॥

कर्मप्राभृतका ज्ञाता होकर जो उपयुक्त है वह भावकर्म है।

विशेषार्थ - सूत्रमें आगम भावकर्मका लक्षण कहा है। इसका दूसरा भेद नोआगम भावकर्म है। प्रकृतमें भावकर्मके प्रथम भेद आगम भावकर्मका ही सूत्रमें निर्देश है।

इन कर्मोंका किस कर्मसे प्रयोजन है ? समवदान कर्मसे प्रयोजन है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, कर्म अनुयोगद्वारमें समवदान कर्मका ही विस्तारसे कथन किया है। अथवा संग्रह नयकी अपेक्षा ऐसा कहा है। मूल ग्रन्थमें तो प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अध:कर्म, ईर्यापथकर्म, तप:कर्म और क्रियाकर्म प्रधान हैं, क्योंकि, वहां इनका विस्तारसे कथन किया है।

---

(१) ष.खं.पु. ९ पृ. १८९

एत्थ एदाणि छ कम्माणि आधारभूदाणि कादूण संतदव्व-खेत्त-फोसण-कालंतर-भावप्पाबहुआणुओगद्दाराणं परूवणं कस्सामो। तं जहा- संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्म-इरियावथकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्माणि । आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय[1]गईए णेरइएसु अत्थि पओअकम्म-समोदाणकम्मकिरियाकम्माणि । आधाकम्म-इरियावथकम्म-तवोकम्माणि णत्थि; णेरइएसु ओरालियसरीरस्स[2] उदयाभावादो पंचमहव्वयाभावादो । एवं सत्तसु पुढवीसु । देव-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियमिस्सेसु णारगभंगो ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु अत्थि पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधारकम्म-किरिया-कम्माणि । इरियावथकम्म-तवोकम्माणि णत्थि; तिरिक्खेसु महव्वयाभावादो । एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु वि वत्तव्वं । णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु किरियाकम्मं णत्थि; तत्थ सम्मादिट्ठीणमभावादो । मणुसअपज्जत्तपंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचकाय-मदि-सुद-विभंगणाण-मिच्छाइट्ठि-असण्णीणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

यहां इन छह कर्मोको आधार मान कर सत्, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व, इन अनुयोगद्वारोंका कथन करते हैं। यथा-

सत्प्ररूपणाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है- ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अध:कर्म, ईर्यापथकर्म, तप:कर्म और क्रियाकर्म हैं । आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें प्रयोगकर्म, समवदानकर्म और क्रियाकर्म होते हैं । अध:कर्म, ईर्यापथकर्म और तप:कर्म नहीं होते, क्योंकि, नारकियोंके औदारिक शरीरका उदय और पांच महाव्रत नहीं होते । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चहिये । सब प्रकारके देव, वैक्रियिकशरीर काययोगी और वैक्रियिकमिश्र काययोगी मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भंग हैं ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अध:कर्म और क्रियाकर्म होते हैं । ईर्यापथकर्म और तप:कर्म नहीं होते, क्योंकि, तिर्यंचोंके महाव्रत नहीं होते । इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिनी और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके क्रियाकर्म नहीं होता, क्योंकि, उनमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते । मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पांच स्थावर काय, मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग हैं । अर्थात् इनके प्रयोगकर्म, समवदान कर्म और अध:कर्म होते हैं, शेष कर्म नहीं होते ।

---

(१) ताप्रतौ 'णेरइय' इति पाठः । (२) आप्रतौ 'तवोकम्माणि आधाए णेरइएसु ओरालिय' ताप्रतौ 'तवोकम्माणि णेरइएसु णत्थि ओरालिय' इति पाठः ।

मणुसगदीए मणुस्सेसु मणुसपज्जत्तमणुसिणीसु ओघं । एवं पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण-पंचवचिकायजोगि-ओरालिय-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकायजोगि-आभिणि-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणि-संजद[1]चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणि सुक्कलेस्सियभवसिद्धिय-सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सण्णिआहारीसु वत्तव्वं, विसेसाभावादो । आहार-आहारमिस्साणमोघं । णवरि इरियावथकम्मं णत्थि; तत्थ खीणुवसंतकसायाणमभावादो । एवं तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-सामाइय-छेदोवट्ठावण-परिहारसुद्धिसंजदतेउपम्मलेस्सिय-वेदगसम्मादिट्ठीणं वत्तव्वं, अविसेसादो। सुहुमसांपराइय-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणमोघं । णवरि किरियाकम्मं णत्थि; ज्झाणेगग्गमणाणं तदसंभवादो । णवरि सुहुमसांपराइएसु इरियावथकम्मं पि णत्थि, सकसाएसु तदसंभवादो । अवगदवेद-अकसाइ-केवलणाणि-केवलदंसणीणं जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदभंगो । संजदासंजदेसु अत्थि पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्म-किरियाकम्माणि । एवमसंजद-किण्ह-णील-काउलेस्सियाणं पि वत्तव्वं । एवमभवसिद्धिय-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणं वत्तव्वं । णवरि किरियाकम्मं णत्थि । अणाहारेसु ओघं । एवं संतपरूवणा समत्ता ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें तथा मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें ओघके समान कर्म होते हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, कार्मणकाययोगी, आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्यसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके कथन करना चाहिये, क्योंकि, उनसे इनमें कोई भेद नहीं है ।

आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोगियोंके अधिक समान कर्म होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनके ईर्यापथकर्म नहीं होता, क्योंकि, वहां पर क्षीणकषाय और उपशान्तकषाय अवस्थाओंका अभाव है । इसी प्रकार तीन वेद, चार कषाय, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि, उनसे इनमें कोई विशेषतः नहीं है । सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातविहार शुद्धिसंयत जीवोंके ओघके समान कर्म होते हैं । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं होता, क्योंकि, इनका मन ध्यानमें लगा रहता है, इसलिये वहां क्रियाकर्मका होना असंभव है । साथ ही इतनी और विशेषता है कि सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंके ईर्यापथ कर्म भी नहीं होता, क्योंकि, कषायसहित जीवोंका ईर्यापथ कर्म नहीं हो सकता । अपगतवेदी, अकषायी, केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंके यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवोंके समान कर्म होते हैं । संयतासंयतजीवोंके प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अधःकर्म और क्रियाकर्म होते हैं । इसी प्रकार असंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले और कापोत लेश्यावाले जीवोंके भी कहना चाहिये । तथा इसी प्रकार अभव्यसिद्धिक, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमे क्रियाकर्म नहीं होता । अनाहारक जीवोंके ओघके समान कर्म होते हैं । इस प्रकार सत्प्ररूपणा समाप्त हुई ।

---

(१) ताप्रतौ 'संजम' इति पाठः ।

दव्वपमाणाणुगमे भण्णमाणे ताव दव्वट्ठद[1]पदेसट्ठदाणं अत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा- पओअकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्मेसु जीवाणं दव्वट्ठदा त्ति सण्णा । जीवपदेसाणं पदेसट्ठदा त्ति ववएसो । समोदाणकम्म-इरियावथकम्मेसु जीवाणं दव्वट्ठदा त्ति ववएसो । तेसु चेव जीवेसु ट्ठिदकम्मपरमाणूणं अभवसिद्धिएहि अणंतगुणाणं सिद्धेहिंतो अणंतगुणहीणाणं पदेसट्ठदा त्ति सण्णा । आधाकम्मम्मि अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणाणं सिद्धेहिंतो अणंतगुणहीणाणं ओरालियसरीरणोकम्मक्खंधाणं दव्वट्ठदा त्ति सण्णा । तेसु चेव ओरालियसरीरणोकम्मक्खंधेसु ट्ठिदपरमाणूणमभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणाणं सिद्धेहिंतो अणंतगुणहीणाणं पदेसट्ठदा त्ति सण्णा ।

संपहि एदेण अट्ठपदेण दव्वपमाणाणुगमे भण्णमाणे दुविहो णिद्देसो- ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण पओगकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माणं दव्वट्ठपदेसट्ठदाओ इरियावथ-कम्मपदेसट्ठदा च केवडिया ? अणंता । तं जहा- पओगकम्म-समोदाणकम्माणमणंतिमभा-गूणसव्वजीवरासिस्स दव्वट्ठदाए गहणादो । एदेसिं पदेसट्ठदा वि अणंता; एदेसु जीवेसु घण-लोगेण गुणिदेसु पओगकम्मपदेसट्ठदाए पमाणुप्पत्तीदो । तेसु चेव जीवेसु कम्मपदेसेहि गुणिदेसु समोदाणकम्मपदेसट्ठदापमाणुप्पत्तीदो । इरियावथकम्मपदेसट्ठदा वि अणंता[2] चेव; सयलवीयरायकम्मपदेसग्गहणादो । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंता । कुदो ? ओरालियसरीर-णो-

द्रव्यप्रमाणानुगमका कथन करते समय सर्व प्रथम द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताके अर्थका कथन करते हैं । यथा- प्रयोगकर्म, तप:कर्म और क्रियाकर्ममें जीवोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है, और जीवप्रदेशोंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है । समवदानकर्म और ईर्यापथकर्ममें जीवोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है और उन्हीं जीवोंमें स्थित अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन कर्म-परमाणुओंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है । अध:कर्ममें अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन औदारिक शरीरके नोकर्म स्कन्धोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है और उन्हीं औदारिकशरीर नोकर्मस्कन्धोंमें स्थित अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन परमाणुओंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है ।

अब इसी अर्थपदके अनुसार द्रव्यप्रमाणानुगमका कथन करने पर निर्देश दो प्रकारका है- ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा प्रयोगकर्म, समवदानकर्म और अधःकर्मोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता, तथा ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता कितनी है ? अनन्त है । यथा- प्रयोगकर्म और समवदानकर्मकी द्रव्यार्थतारूपसे अनन्तवें भाग कम सब जीवराशि ग्रहण की गई है । इनकी प्रदेशार्थता भी अनन्त है, क्योंकि, इन जीवोंका घनलोकसे गुणित करने पर प्रयोकगर्मकी प्रदेशार्थताका प्रमाण उत्पन्न होता है, और इन्हीं जीवोंको उनके कर्मप्रदेशोंसे गुणित करने पर समवदान कर्मकी प्रदेशार्थताका प्रमाण उत्पन्न होता है । ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता भी अनन्त ही है, क्योंकि, इसके द्वारा सकल वीतराग जीवोंके कर्मप्रदेशोंका ग्रहण किया गया है । अध:कर्मकी द्रव्यार्थता अनन्त है, क्योंकि, इसके द्वारा औदारिक शरीरके अनन्त नोकर्मस्कन्धोंका ग्रहण किया गया है । और इसकी प्रदेशार्थता भी अनन्त है, क्योंकि, एक एक

(१) ताप्रतौ 'दव्वट्ठिद-' इति पाठः । (२) अ-आप्रत्योः 'पदेसट्ठदाए अणंता', इति पाठः ।

कम्मक्खंधाणमणंताणं गहणादो। तस्स पदेसट्ठदा वि अणंता; एक्केक्कम्हि णोकम्मक्खंधे अणंताणं परमाणूणमुवलंभादो । इरियावथ-तवोकम्मदव्वट्ठदा केवडिया ? संखेज्जा । कुदो? महव्वयधारीणं जीवाणं मणुस्सपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ[1] अणुवलंभादो । तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जा[2]; घणलोगेण संखेज्जमहव्वइजीवेसु गुणिदेसु संखेज्जघणलोगुवलंभादो । किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जा । कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसम्माइट्ठीसु चेव किरियाकम्मुवलंभादो । तस्स पदेसट्ठदा वि असंखेज्जा । कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागसम्माइट्ठिरासिणा घणलोगे गुणिदे असंखेज्जलोगपमाणुप्पत्तीदो । एवं कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालिय मिस्स[3]-कायजोगि-कम्मइयकायजोगि-अचक्खुदंसणिभवसिद्धिय-आहारअणाहारयाणं वत्तव्वं । णवरि ओरालियमिस्सकायजोगीसु किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जा[4] ।

णिरयगदीए णेरइएसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं दव्वट्ठदा पदेसट्ठदा च केवडिया ? असंखेज्जा । णवरि समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंता; पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तरासिणा अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणे सिद्धाणमणंतिमभागे कम्मपदेसे गुणिदे अणंतरासिसमुप्पत्तीदो । एवं पढमाए पुढवीए वत्तव्वं । बिदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सेडीए असंखेज्जदिभागेण घणलोगे गुणिदे पओअकम्मपदेसट्ठदा होदि; तत्थ

नोकर्मस्कन्धमें अनन्त परमाणु पाये जाते हैं।

ईर्यापथकर्म और तपःकर्म की द्रव्यार्थता कितनी है ? संख्यात है, क्योंकि, महाव्रतधारी जीव मनुष्यपर्याप्तकोंको छोडकर अन्यत्र नहीं पाये जाते । तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यात है, क्योंकि, संख्यात महाव्रतधारियोंको घनलोकके द्वारा गुणित करनेपर संख्यात घनलोक उपलब्ध होते हैं ।

क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यात है, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सम्यग्दृष्टियोंमें ही क्रियाकर्म पाया जाता है । और इसकी प्रदेशार्थता भी असंख्यात है, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सम्यग्दृष्टि राशिद्वारा धनलोकके गुणित करने पर असंख्यात लोकोंकी उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, आहारक और अनाहारक जीवोंका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि औदारिक-मिश्रकाययोगियोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात है ।

नरकगतिमें नारकियोंमें प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता कितनी है ? असंख्यात है । इतनी विशेषता है कि समवदान कर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि, जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण राशिद्वारा अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तवें भागप्रमाण कर्मप्रदेशोंको गुणित करनेपर अनन्तराशिकी उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें कथन करना चाहिये । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन पृथिवियोंमें जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे घनलोकके

---

(१) ताप्रतौ 'अण्णस्स' इति पाठः । (२) ताप्रतौ 'संखेज्जा', आप्रतौ 'पदेसट्ठदाए संखेज्जा', ताप्रतौ 'पदेसट्ठदा संखेज्जा' इति पाठः । (३) ताप्रतौ 'कायजोगिओरालियमिस्स' इति पाठः । (४) अ-ताप्रत्योः 'असंखेज्जा' इति पाठः ।

पओअकम्म दव्वट्ठदाए सेडीए असंखेज्जदिभागत्तुवलंभादो। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण घणलोगे गुणिदे किरियाकम्मपदेसट्ठदा होदि; पलिदोवमअसंखेज्जदिभागमेत्तदव्वट्ठदाए तत्थुवलंभादो । सेडीए असंखेज्जदिभागेण एगजीवकम्मपदेसेसु कयमज्झिमपमाणेसु गुणिदेसु समोदाणपदेसट्ठदा होदि, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तदव्वट्ठदाए तत्थुवलंभादो । 'प्रक्षेपकसंक्षेपेण' एदेण सुत्तेण एत्थ समकरणं कायव्वं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु ओघं । णवरि इरियावथ-तवोकम्माणि णत्थि; तत्थ महव्वयाणमसंभवादो । (एवमसंजद-किण्ह-णील-काउलेस्सियाणं पि वत्तव्वं ।) पंचिंदियतिरिक्खतिगेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि दव्वट्ठदाए पदरस्स असंखेज्जदिभागो । पओअकम्मपदेसट्ठदा पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता घणलोगा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंता; पदरस्स असंखेज्जदिभागेण एगजीवसमकरणुप्पण्णकम्मपदेसेसु गुणिदेसु अणंतरासिसमुप्पत्तीदो । आधाकम्मदव्वट्ठदा[1] अणंता; एगजीवस्स एगसमयणिज्जिण्णतप्पाओग्गाणंतओरालियणोकम्मवग्गणाणं गहणादो । पदेसट्ठदा[2] वि अणंता; आधाकम्मदव्वट्ठदाए[3] अभवसिद्धिएहि अणंतगुणेहि सिद्धाणमणंतिमभागेहि णोकम्मपदेसेहि गुणिदाए अणंतरासिसमुप्पत्तीदो । किरियाकम्मदव्वट्ठदा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । पदेसट्ठदा असंखज्जा लोगा; पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण

गुणित करनेपर प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता होती है, क्योंकि, वहां पर प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता जगश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र पाई जाती है। और पल्योपमके असंख्यातवें भागसे घनलोकके गुणित करनेपर क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता होती है, क्योंकि, वहां पर क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र पाई जाती है । और जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे मध्यम प्रमाणरूपसे ग्रहण किये गये एक जीवके कर्मप्रदेशोंके गुणित करने पर समवदानकर्मकी प्रदेशार्थता होती है, क्योंकि, वहां पर समवदानकर्मकी द्रव्यार्थता जगश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र पाई जाती है । 'प्रक्षेपकः संक्षेपेण' इस सूत्रद्वारा यहां पर समीकरण कर लेना चाहिये ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें ओघके समान द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता होती है । इतनी विशेषता है कि यहां पर ईर्यापथकर्म और तपःकर्म नहीं होते, क्योंकि, इन जीवोंके महाव्रतका पाया जाना सम्भव नहीं है । (इसी प्रकार असंयत तथा कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवों के भी कहना चाहिए ।) पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें प्रयोगकर्म और समवदानकर्म द्रव्यार्थताकी अपेक्षा जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण है । प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र घनलोक है । समवदानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि, जगप्रतरके असंख्यातवें भागसे एक जीवके समीकरणद्वारा उत्पन्न हुए कर्मप्रदेशोंके गुणित करने पर अनन्त राशिकी उत्पत्ति होती है । अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्त है, क्योंकि, एक जीवके एक समयमें निर्जीर्ण होनेवाले और निर्जराके योग्य अनन्त औदारिक नोकर्मवर्गणाओंका इसके द्वारा ग्रहण किया गया है । इसकी प्रदेशार्थता भी अनन्त होती है, क्योंकि, अधःकर्मकी द्रव्यार्थता द्वारा अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र नोकर्मप्रदेशोंके गुणित करनेपर अनन्त राशिकी उत्पत्ति होती है । इनके क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता पल्योपमके असंख्यातवे भागमात्र है और प्रदेशार्थता असंख्यात

---

(१) ताप्रतौ 'दव्वट्ठदाए' इति पाठः । (२) अ-आप्रत्योः 'पदेसट्ठदाए' इति पाठः । (३) ताप्रतौ 'दव्वट्ठदा' इति पाठः।

घणलोगे गुणिदे पदेसट्ठदुप्पत्तीदो । एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं । णवरि किरियाकम्मं णत्थि । एवं बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-पुढवी-आउ-तेउ-वाउ-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणं पि वत्तव्वं । णवरि अप्पप्पणो पदेसट्ठदागुणगारो जाणिदव्वो ।

मणुसगदीए मणुस्सेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं दव्वट्ठदा सेडीए असंखेज्जदिभागो । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जा लोगा । कुदो ? घणलोगेण सेडीए असंखेज्जदिभागे गुणिदे पओअकम्मपदेसट्ठदापमाणुप्पत्तीदो । समोदाणकम्मपदेसट्ठवा अणंता; सेडीए असंखेज्जदिभागेण समयाविरोहिकम्मपदेसेसु गुणिदेसु समोदाणकम्मपदेसट्ठदुप्पत्तीदो । सेसचत्तारि पदा ओघं । णवरि किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जा[1] । पदेसट्ठदा असंखेज्जा; संखेज्जजीवेहि घणलोगे गुणिदे तप्पदेसट्ठदुप्पत्तीदो । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि पओअकम्मसमोदाणकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जा । पओअकम्मपदेसट्ठदा संखेज्जा लोगा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा[2] अणंता; संखेज्जपरूवेहि एगपक्खेवकम्मपदेसेसु गुणिदेसु समोदाणकम्मपदेसट्ठदुप्पत्तीदो । मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । पंचिंदियदुगस्स मणुस्सोघं । णवरि किरियाकम्म-

---

लोकप्रमाण है, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागसे घनलोकके गुणित करनेपर यहां क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं होता । इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रदेशार्थताका गुणकार जानना चहिये ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें प्रयोगकर्म और समवदानकर्मकी द्रव्यार्थता जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि, घनलोकसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागको गुणित करने पर प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थताका प्रमाण उत्पन्न होता है । समवदानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि, जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे यथाशास्त्र कर्मप्रदेशोंके गुणित करनेपर समवदानकर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है । शेष चार पद ओघ के समान हैं । इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्म की द्रव्यार्थता संख्यात है और प्रदेशार्थता असंख्यात है, क्योंकि, संख्यात जीवोंसे घनलोकके गुणित करनेपर क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है । इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रयोगकर्म और समवदानकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात है । तथा प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यात लोकप्रमाण है, और समवदानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि, संख्यात अंकोंसे एक जीवके प्रति प्राप्त कर्मप्रदेशोंके गुणित करने पर समवदानकर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है । मनुष्य अपर्याप्तकोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है ।

---

(१) आ-प्रतौ 'असंखेज्जा' इति पाठः । (२) आ-ताप्रत्योः 'समोदाणपदेसट्ठदा' इति पाठः ।